उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं की उल्लेखनीय वैश्विक वृद्धि*

डी. सुब्बाराव

आज की कार्यसूची में रखे गए तीन विषय इस समय प्रासंगिक हैं और हम आगामी महीनों में उनका जो उत्तर देते हैं उससे यह निश्चित होगा कि विश्व आर्थिक वृद्धि और वित्तीय स्थिरता को किस प्रकार प्राप्त करता है और बनाए रखता है।

मैं पहले विषय से शुरुआत करना चाहता हूं: उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं (ईएमई) वैश्विक आर्थिक संपन्नता की प्राप्ति में किस प्रकार अपना सर्वोत्तम योगदान कर सकती हैं?

वैश्विक आर्थिक संपन्नता की प्राप्ति में ईएमई जिस सर्वाधिक महत्वपूर्ण मार्ग से अपना योगदान दे सकती हैं वह यह है कि वे अपनी वृद्धि की गति को और बढ़ाएं।

पिछले कुछ माह विशेष थे। ईएमई ने स्वयं को उन्नत अर्थव्यवस्थाओं से शक्तिशाली तरीके से अलग कर लिया है जिसके लिए डिकपल शब्द रुढ़ हो गया है और संकट-प्रेरित निभावी नीतियों से बाहर निकलने का अपना मार्ग बनाया है। कुछ माह पहले भी, अधिक लोगों ने यह नहीं सोचा होता कि यह वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए इतना अधिक महत्वपूर्ण है। किंतु अब हम जानते हैं कि ईएमई ने ''अंतर'' बना लिया है। संकट से शीघ्र बाहर निकलकर ईएमई ने वैश्विक अर्थव्यवस्था को अति आवश्यक प्रेरणा दी है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य देखने के लिए, एंगस मॅडिसन की दीर्घावधि जीडीपी समय श्रृंखला के अनुसार, औद्योगिक क्रांति से पहले वैश्विक जीडीपी में चीन और भारत का हिस्सा लगभग आधा था। तब से उनका योगदान कम होकर 10 प्रतिशत से नीचे आ गया है। तेज आर्थिक विकास चीन और भारत की प्रति व्यक्ति जीडीपी बढ़ाने में मदद कर सकता है जिससे उन्नत देशों से उनका अंतर क्रमश: कम होगा जैसे कि जापान, कोरिया और सिंगापुर पहले ही कर चुके हैं। इस प्रकार वे वैश्विक अर्थव्यवस्था को

* आइएमएफ, वाशिंगटन डीसी में 9 अक्तूबर 2010 को 'आगे बढ़ती उभरती अर्थव्यवस्थाओं की भूमिका और प्रमुख नीतिगत चुनौतियां' पर पैनल चर्चा में डॉ.दुव्वुरि सुब्बाराव, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा दिया गया भाषण।

विविधतायुक्त वृद्धि का संबल उपलब्ध कराएंगे और वैश्विक आर्थिक संपन्नता में अपना योगदान करेंगे।

ईएमई वैश्विक अर्थव्यवस्था को सहायता कर सकती हैं यह बात इस संकट में हमारे अनुभवों ने सिद्ध कर दी है। उदाहरण के लिए, यह महामंदी जितनी अधिक हो सकती थी उतनी वह नहीं थी जिसका कारण ईएमई और विशेष रूप से चीन तथा भारत की वृद्धि का योगदान था। और वर्तमान स्थिति में, जब उन्नत अर्थव्यवस्थाएं अब भी मांग संबंधी मंदी का सामना कर रही हैं, यह ईएमई से हो रही आयात-मांग है जो उन्हें आवश्यक समायोजन के लिए मदद कर रही है।

अपनी वृद्धि-गति को बनाए रखने के लिए ईएमई को भारी चुनौतियां का सामना करना पड़ेगा और सामूहिक तथा एकल देशी कार्यनीतियां बनानी होंगी। ये क्या होनी चाहिए यह बात अब एकदम साफ हो गई है।

सितंबर के संकट ने हमें जिस बात के प्रति सचेत किया वह यह है कि सारे अंडे वृद्धि के एक ही इंजिन में रखना जोखिमपूर्ण है (इस मिश्रित उदाहरण के लिए मैं क्षमा चाहता हूं)। अर्थव्यवस्था को देशी मांग के प्रति पुन: संतुलित करना स्पष्ट रूप से प्रमुख बात है। मात्र वस्तुओं में ही नहीं बल्कि सेवाओं में भी अंतर-ईएमई व्यापार को बढ़ाना और उसे गहन करना वह अन्य क्षेत्र है जहां ईएमई द्वारा फोकस करने की आवश्यकता है। अंतर-ईएमई वित्तीय प्रवाह दुखद रूप से कम है। ये तो ऐसे लाभदायक क्षेत्र हैं जिनका दोहन किया जाना चाहिए।

देशी स्तर पर भी काफी कार्य करने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए भारत के मामले में, हमें बुनियादी सुविधाओं की कमी पूरी करने, सामाजिक क्षेत्र के परिणामों पर फोकस करने, संचालन सुधारने और निजी निवेश और रोजगार निर्माण के लिए कार्यनीतियां लागू करने की आवश्यकता है।

दूसरा क्षेत्र जहां ईएमई वैश्विक संपन्नता में योगदान दे सकती हैं वह यह सुनिश्चित करना है कि जी-20 फोरम अर्थपूर्ण और प्रभावी बना रहे।

जब इस संकट का इतिहास लिखा जाएगा तब अप्रैल 2009 के लंदन जी-20 शीखर सम्मेलन को एक स्पष्ट मोड़-बिंदु के रूप में याद किया जाएगा जहां विश्व के नेताओं ने हमारी पीढ़ी के गंभीरतम संकट का का मिलकर मुकाबला करने के लिए असाधारण निश्चय और एकता प्रदर्शित की थी। निश्चित ही वहां मत-भिन्नता थी किंतु उन पर चर्चा करके संकट समाप्ति के अंतिम लक्ष्य को बनाए रखते हुए समझौते किए गए।

अब जब हम संकट से बाहर निकल रहे हैं तो यह चिंताएं और आशंकाएं शुरू हो रही हैं कि संकट के दौरान जी-20 में दिखाई गई एकता अब समाप्त हो रही है। जी-20 के संबंध में अनेक एक जैसी और गलत धारणाएं हैं। ये इसके कुछ उदाहरण हैं: कि जी-20 प्रक्रिया वित्तीय क्षेत्र के विनियमों पर विभिन्न धारणाओं की बंधक बन गई है; कि राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तरों पर शुरू किए जा रहे सुधार वैश्विक आशा के अनुरूप नहीं हैं; कि ट्रांस-अटलांटिक भिन्नता सामने आई है, उदाहरण के लिए, संकट के चरम के समय उभरे राजकोषीय प्रोत्साहनों की मात्रा अब संकट की समाप्ति पर ''उत्तर-दक्षिण'' मतभेद में बदल गई है; कि ईएमई को स्थान मिलने के बावजूद जी-20 की कार्यसूची में अब भी उन्नत देशों की चिंताओं को प्रमुखता दी जाती है।

ईएमई इन धारणाओं से लड़कर और इन एकरूपी दृष्टिकोणों को तोड़कर वैश्विक आर्थिक संपन्नता में अपना योगदान दे सकती हैं। जी-20 शायद सटीक मंच न हो, किंतु हमारे पास उपलब्ध में से यह सर्वोत्तम है।

सुचारू रूप से कार्यरत वैश्विक अर्थव्यवस्था उन्नत और विकासशील दोनों ही अर्थव्यवस्थाओं को लिए बड़ी

आस्ति है। पिछली सदी के अधिकांश भाग में अमरीका और यूरोप ने वैश्विक अर्थव्यवस्था के संचालन का ढांचा बनाने में प्रमिख भूमिका निभाई। ब्रेटन वुड्स संस्था की स्थापना और अंतरराष्ट्रीय व्यापार के उदारीकरण से लेकर आर्थिक संकट के प्रतिसादों के समन्वय के लिए वैश्विक वित्तीय मानकों की स्थापना तक। अब ईएमई ने आगे आकर अपनी भूमिका निभाने की आवश्यकता है। हमें याद रखना होगा कि राष्ट्रों में विभाजित विश्व में वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए कोई नैसर्गिक क्षेत्र नहीं है। किंतु, जैसा कि सितंबर के संकट ने दर्शाया है, वैश्विक अर्थव्यवस्था अब एक इकाई के रूप में पहले की तुलना में बहुत महत्वपूर्ण हो गई है। हमें किसी ऐसी स्थिति को विकसित नहीं होने देना है जहां वैश्विक संपन्नता संबंधी आवश्यक निर्णय दरारों में फिसल जाएं।

अत:, ईएमई के लिए यह आवश्यक है कि वे वैश्विक रूप से उपयोगी कार्यनीति बनाने के लिए जी-20 के झंडे तले उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के साथ कंधा मिलाकर सक्रिय रूप से कार्य करें।

ईएमई वैश्विक संपन्नता में जिस तीसरे माध्यम से अपना योगदान दे सकती हैं और जिसके संबंध में मैं जी-20 की प्रक्रिया के संबंध में पहले भी उल्लेख कर चुका हूं, वह यह है कि वैश्विक ढांचे का कार्यान्वयन और संबंधित पारस्परिक आकलन प्रक्रिया (एमएपी) को सफल बनाया जाए।

जी-20 के नेता जुलाई 2010 के अपने टोरंटो शीखर सम्मेलन में 'मजबूत, टिकाऊ और संतुलित वृद्धि का ढांचा' पर सहमत हुए थे। इस ढांचे के मध्य में वे कार्यनीतियां हैं जो उन्नत और उभरती अर्थव्यवस्थाओं द्वारा बाह्य शेषों की बहाली और आवश्यकतानुसार उनके वित्तीय क्षेत्र को दुरुस्त करने के लिए लागू की जाएंगीं। उन कारणों से जो कि स्पष्ट हैं, इन राष्ट्रीय कार्यनीतियों की रूपरेखा और कार्यान्वयन में समन्वय करना होगा। इस प्रकार का कोई भी ढांचा विश्वास और पारस्पारिकता के माहौल में ही सफल हो सकता है। उभरती अर्थव्यवस्थाएं वैश्विक ढांचे को सफल बनाने के ईमानदार प्रयास करके वैश्विक संपन्नता में अपना योगदान दे सकती हैं।

अब मैं दूसरे मामले पर आना चाहता हूं। वे कौनसी समष्टि आर्थिक नीतिगत चुनौतियां हैं जो वैश्विक स्थिति के पुन:संतुलन के संदर्भ में ईएमई के सामने आने की संभावना है?

ईएमई संकट के दौरान कम हुई वृद्धि की गति में सुधार लाने के लिए जैसे प्रयास करते हैं तब उनके सामने अनेक चुनौतियां आती हैं जो कि अंतर-संबंधित हैं।

संकटोत्तर विश्व दो महत्वपूर्ण विशेषताओं से परिभाषित होगा। पहली, उन्नत देशों में वृद्धि मंद होगी, और दूसरा, वैश्विक माहौल वैश्विकरण के लिए कम उपयुक्त होगा। हम इस पर एक-एक करके आते हैं।

पिछले चार महीनों की जनभावना से दिखे अनुसार उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में मंदी रहेगी क्योंकि वे वृद्धि की कीमत पर भी वित्तीय स्थिरता बहाली को प्राथमिकता देंगी। यह अल्पावधि ट्रेड ऑफ न होकर मध्यावधि हो सकता है। स्वयं आइएमएफ ने ''न्यू नॉरमल'' की बात की है - उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के वित्तीय क्षेत्र और पूंजी हानि के की बाधा के कारण उनकी संभाव्य वृद्धि में अधोमुखी अंतरण। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं हाउसहोल्डों और फर्मों को निजी स्तर पर उनके तुलनपत्रों को सुधारने में और अर्थव्यवस्थाओं को समग्र स्तर पर बाह्य और आंतरिक शेषों की बहाली में कम-से-कम कुछ वर्ष लग जाएंगे। प्रक्रिया के दौरान, उन्नत अर्थव्यवस्थाओं को ढांचागत राजकोषीय घाटे, जनसांख्यकीय रूपांतरण, बदतर होते आय वितरण और बेरोजगारी से लड़ना होगा।

कम वृद्धि के परिदृष्य का परिणाम, जो देशी चिंताओं से और बदतर हुआ है, यह है कि वैश्विकरण के प्रति भावना

कम स्वागत वाली हुई है। ''अवैश्विकरण'' वाली बात भलेही न हो, किंतु पहले की शास्त्रसम्मतता कि वैश्विकरण अमिश्रित वरदान है, को मिलने वाली चुनौतियां बढ़ती जा रही हैं। इसके पीछे तर्क यह था और आशा है कि यह अब भी है, कि भलेही उन्नत देशों में कम लाभदायक कार्य बाहर से कराए जा रहे हो, फिर भी उन्हें वैश्विकरण के लाभ मिलते रहेंगे क्योंकि कम लाभदायक कार्य बाहर जाने पर वहां अन्य अधिक लाभदायक कार्य जिसमें अधिक कुशलता की आवश्यकता होती है, उत्पन्न होता है। यदि यह कार्य तेजी से और दिखने योग्य तरीके से नहीं होता है तो संरक्षणवादी दबाव उभरेंगे और तेजी से यह आवाज बढ़ेगी तथा राजनीतिक बाध्यता आएगी। विश्वभर में दिख रही मुद्रा अवमूल्यन की लहर संरक्षणवादी दबाव का संकेत है।

आगे, वृद्धि के ''न्यू नॉरमल'' और वैश्विकरण के प्रति कम रुचि के उभरते विश्व में अपनी वृद्धि और विकास की रणनीति पर चलना ईएमई के लिए सबसे बड़ी चुनौती होगी। इस चुनौती का सामना करने के लिए, ईएमई के लिए समायोजन आवश्यक होगा और सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप से, मांग के बाह्य से आंतरिक स्त्रोतों के पुन:संतुलन से। भारत जैसे देश के लिए भी जहां वृद्धि के प्रेरक मुख्यत: आंतरिक रहे हैं, कम वैश्विक मांग निर्यात को और समग्र वृद्धि निष्पादन को प्रभावित करेगी।

ईएमई के लिए दूसरी बड़ी चुनौती बासेल III का कार्यान्वयन है। बासेल III की सामान्य रूपरेखा - अधिक और बेहतर गुणवत्ता की पूंजी, प्रति-चक्रीय बफर, लीवरेज पर सीमा और न्यूनतम चलनिधि बनाए रखना - से सभी अच्छी तरह से परिचित हैं इसलिए मैं उन्हें दोहराना नहीं चाहता। 'अनुपालन करें या स्पष्ट करें'' प्रावधान के माध्यम से अपनाने और लागू करने में राष्ट्रीय अंतर के लिए कुछ शिथिलता भी है।

बासेल III निसंदेह सुविचारित धारणा है और यह संकट के सबक दर्शाता है। किंतु, इसे लागू करने का कार्य उस समय आया है जब ईएमई की कर्ज की मांग बढ़ रही है। उदाहरण के लिए, भारत एशिया में दूसरी सबसे तेज गति से बढ़ रही अर्थव्यवस्था है किंतु हमारा कर्ज-जीडीपी अनुपात एशिया में दूसरा निम्नतम है। कर्ज के बैंकेतर स्त्रोतों और आंतरिक बचत ने बैंक कर्ज की वृद्धि को कम रखा है। किंतु इन सभी का यह अर्थ है कि ये स्त्रोत समाप्त होते ही तेज संकुचन होगा। हमारी कर्ज की मांग तेजी से बढ़ेगी जिसका कारण बुनियादी सुविधाओं की निवेश आवश्यकता, विनिर्माण क्षेत्र में संकुचन और सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप से वित्तीय समावेशन से आने वाली कर्ज की मांग होगा।

बासेल III के लिए पूंजी बफर का निर्माण आवश्यक होता है। बफर बुरे समय में बीमा का कार्य करते हैं किंतु वे उधार की लागत भी बढ़ाते हैं और समग्र उधार को कम कर सकते हैं। इसके अलावा, प्रति-चक्रीय बफर के लिए कारोबार चक्र के पथ और झुकाव-बिंदु की पहचान पर निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। गलत निर्णय से पूर्वनिश्चित वृद्धि के संदर्भ में लागत में भारी वृद्धि हो सकती है। ईएमई को बासेल III लागू करने की चुनौती का सामना करना पड़ेगा और उसी समय यह सुनिश्चित करना होगा कि व्यापक रूप स बढ़ रही ऋण-मांग वहनीय लागत पर पूरी की जाए।

अंत में, मैं इस प्रश्न पर ध्यान देना चाहूंगा कि उभरती अर्थव्यवस्थाएं अस्थिर पूंजी प्रवाहों का किस प्रकार अच्छी तरह से सामना कर सकती हैं? क्या समष्टि विवेक सम्मत नीतियां प्रभावी हो सकती हैं?

बहु-गतीय सुधार उभरती अर्थव्यवस्थाओं को पूंजी प्रवाहों की बहाली का स्पष्ट परिणाम रहा है।

वित्तीय स्थिरता की बहाली के लिए उन्नत अर्थव्यवस्थाओं ने बाजारों को आश्वासन दिया है कि वे विस्तारित अवधि में कम ब्याज दर बनाए रखेंगे। और अपेक्षाओं के प्रबंध के लिए उन्होंने इस मंशा पर बार-बार बल दिया है।

दूसरी ओर, अपने पूर्ववर्ती सुधार के कारण ईएमई ने अपनी संकट से प्रेरित विस्तारवादी नीतियों को बहुत जल्द उलटना शुरू कर दिया। उदाहरण के लिए, भारत में अपनी अनूठी वृद्धि-मुद्रास्फीति गतिशीलता के कारण हमने मार्च 2010 से नीतिगत ब्याज दरें पांच बार बढ़ाईं। भारत में गन भावना पर प्रभुत्व रखने वाला एक मामला यह है कि कि क्या रिज़र्व बैंक नीतिगत दरों के निरपेक्ष स्तर पर पहुंच गया है, भलेही वे कुछ भी हों।

उन्नत अर्थव्यवस्थाओं और ईएमई के बीच ब्याज दर अंतर से ईएमई में पूंजी प्रवाह स्वाभाविक रूप से बढ़ गया जिससे उनकी मुद्रा पर ऊर्ध्वमुखी दबाव आ गया और उनका समष्टि आर्थिक प्रबंधन जटिल हो गया। यह बात समझने योग्य है कि ईएमई विचलित हैं। आदर्श रूप से, ईएमई स्थिर पूंजी प्रवाह चाहती हैं जो कि उनके चालू खाते के घाटे को पूरा करने के लिए पर्याप्त होना चाहिए। यह केवल एक विचार है। वस्तुत:, मैंने अब पूंजी प्रवाह की विधि बना ली है जिसके अनुसार ''पूंजी प्रवाह सही समय पर या सही मात्रा में कभी नहीं आता''।

पूंजी प्रवाह के प्रबंधन के लिए, ईएमई के पास आसान विकल्प नहीं है। यह संभव है, यद्यपि बहुत प्रभावी न सही, कि प्रवाहों के प्रकार में सुधार किया जाए। पूंजी नियंत्रण को विभिन्न प्रकार से लिया जा सकता है। साथ ही, रुको-बढ़ो नीति ने संभाव्य निवेशकों को गलत संकेत दिए। इन सब के बावजूद, विभिन्न ईएमई ने मूल्य और मात्रा संबंधी विविधता दोनों के पूंजी नियंत्रण के लिए प्रयास किए हैं और वे प्रयास करते रहें।

भारत में, पूंजी खाता प्रबंधन पर हमारी अपनी चिंता थी। 2007-08 के दौरान, संकट से पहले के वर्ष में, हमारी ओर के प्रवाह हमारे चालू खाते के घाटे (सीएडी) की तुलना में अधिक थे। 2008-09 के संकट के वर्ह में, प्रवाह सीएडी की तुलना में बहुत कम थे। पिछले वर्ष 2009-10 में, हमारी स्थिति बहुत अच्छी थी क्योंकि पूंजी प्रवाह सीएडी से थोड़े ही अधिक थे। ऐसी अच्छी स्थिति बहुत कम बार आती है।

चालू वर्ष 2010-11 के दौरान, वसंत के समय कुछ बहिर्वाह दिखे जब सामने आए ग्रीक ड्रामा से सुरक्षा की ओर प्रवाह हुआ। किंतु, पिछले कुछ महीनों में तेज अंतर्वाह दिखे जो कि निश्चित ही उच्च अल्पावधि प्रतिलाभ से प्रेरित थे।

और इस प्रकार हम पुन: असंभव त्रयी के प्रबंधन की सामान्य दुविधा का सामना कर रहे हैं। हमारी नीति को दो विचारों का मार्गदर्शन मिला है। एक, हमारी नीति यथासंभव बिना उतार-चढ़ाव के स्थिर होनी चाहिए। दो, नियंत्रण को विवेकपूर्ण ढ़ंग से प्रयोग करना चाहिए।

संकटोत्तर स्थिति ने स्व-बीमा के रूप में आरक्षित निधि निर्माण करने की लागत पर बहस छेड़ दी है। हमें यह स्वीकार करना होगा कि उनके विदेशी मुद्रा भंडारों ने ईएमई को संकट के भयानक प्रभाव से बचा लिया। एक तर्क यह दिया जाता है कि पूर्व-प्रबंधित कर्ज व्यवस्था के बहुविध विकल्प, जहां आसानी से और तुरंत पहुंचा जा सके, वे महंगे स्व-बीमा का विकल्प हो सकते हैं। ऐसा बहुविध विकल्प आवश्यक है किंतु पर्याप्त नहीं है। ईएमई के लिए योजना बी की जरूरत है और आरक्षित निधि वह योजना बी है। और एक अच्छी योजना बी कई बार योजना ए की सफलता और विफलता के बीचअंतर होती है।

इसके अलावा, किसी देश की आरक्षित निधि के स्तर और स्व-बीमा की मात्रा के आकलन में उन देशों के बीच भेद करना यह आवश्यक है जिनकी आरक्षित निधि चालू खाते के अधिशेष का फल है और चालू खाते के घाटे वाले वे देश जिनकी आरक्षित निधि उनकी अर्थव्यवस्था की अवशोषण क्षमता से अधिक पूंजी अंतर्वाहों का फल है।

भारत उक्त दूसरी श्रेणी में आता है। हमारी आरक्षित निधि में अनिवार्य रूप से उधार लिए गए स्रोत होते हैं और इसीलिए चालू खाते के अधिशेष वाले देशों की तुलना में हम अकस्मात रोक और प्रतिगमन के प्रति अधिक भेद्य हैं।

हाल के महीनों में, जब अधिकतर ईएमई में अंतर्वाहों की अधिकता रही है, अनेक केंद्रीय बैंकों ने विदेशी मुद्रा बाजारों में हस्तक्षेप किया है। हमें किसी भी एक माह की तुलना में पिछले माह (सितंबर 2010) में अधिक संविभागीय अंतर्वाह प्राप्त हुए हैं। हमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता महसूस न होने का कारण यह था कि हमारे अवशोषण, जो कि वृद्धि और निवेश की सकारात्मक संभावना के आधार पर आयात बढ़ने से चालू खाते का घाटा बढ़ने से प्रेरित थे, में भी वृद्धि हुई। चालू खाते की बचत या छोटे घाटे से ही हस्तक्षेप हुआ। यदि अंतर्वाह काफी और अस्थिर हों और यदि वे समष्टि अर्थव्यवस्था की स्थिति को प्रभावित कर रहे हों तो हम हस्तक्षेप करेंगे। हमारे हस्तक्षेप का लक्ष्य यह होगा कि चलनिधि की स्थिति को वास्तविक अर्थव्यवस्था में कार्यों के अनुरूप रखा जाए और वित्तीय स्थिरता बनी रहे। हमारा लक्ष्य बदल रहे आर्थिक मूल तत्वों से प्रेरित विकास का विरोध करना नहीं होगा।

क्या हम समष्टि-विवेकसम्मत लिखतों का प्रयोग करेंगे? हम यह कार्य पहले से ही कर रहे हैं और हम इनका प्रयोग जारी रखेंगे। लेकिन यहां महत्वपूर्ण शब्द विवेवसम्मत है। हाल ही में हमने स्टॉक की जमानत पर प्राप्य बैंक उधार संबंधी नियम कड़े किए। हमारा लक्ष्य वित्तीय स्थिरता बनाए रखना ही था।

अब मैं वित्तीय स्थिरता को गंभीरता से लेते हुए मौद्रिक नीति पर कुछ कहते हुए अपना भाषण समाप्त करना चाहूंगा। मैं जानता हूं कि ऐसे अनेक लोग हैं जो यह मामते हैं कि मौद्रिक नीति एक ही लक्ष्य अर्थात माल संबंधी मुद्रास्फीति को स्थिर रखने से दिशानिर्देशित होना चाहिए। मैं सोचता हूं कि विश्व ने ऐसा करने की भारी कीमत चुकाई है। यही वह सोच थी जिसने अनेक केंद्रीय बैंकों को यह देखने से रोक दिया कि उनके वित्तीय बाजारों में क्या हो रहा था जिसके परिणामस्वरूप वैश्विक संकट सामने आया।

भारत में और अनेक ईएमई में, वित्तीय स्थिरता मौद्रिक नीति के लक्ष्य के रूप में महत्वपूर्ण बन गई है। और मैं मात्र आस्ति मूल्य की मुद्रास्फीती की बात नहीं कर रहा, हालांकि यह एक महत्वपूर्ण विचार है। मेरे हिसाब से, यह वह शास्त्रविरुद्ध बात है जिसने ईएमई को व्यापक हानि से बचा लिया जिसने अनेक विकसित वित्तीय बाजारों को सितंबर के संकट में परेशान कर दिया था। मैं गलत हो सकता हूं, किंतु अर्थशास्त्री के व्यवसाय में प्रश्नों की गंभीरता से जांच करने का दायित्व तो होता ही है।